स्त्री सुबोधिनी

हिन्दी ADDA

मन्नू भंडारी

स्त्री सुबोधिनी

प्यारी बहनो, न तो मैं कोई विचारक हूँ, न प्रचारक, न लेखक, न शिक्षक। मैं तो एक बड़ी मामूली-सी नौकरीपेशा घरेलू औरत हूँ, जो अपनी उम्र के बयालीस साल पार कर चुकी है। लेकिन उस उम्र तक आते-आते जिन स्थितियों से मैं गुजरी हूँ, जैसा अहम

अनुभव मैंने पाया... चाहती हूँ, बिना किसी लाग-लपेट के उसे आपके सामने रखूँ और आपको बहुत सारे खतरों से आगाह कर दूँ।

अब सीधी बात सुनिए। सीधी और सच्ची! मेरा अपने बॉस से प्रेम हो गया। वाह! आपके चेहरों पर तो चमक आ गयी! आप भी क्या करें? प्रेम कम्बख्त है ही ऐसी चीज। चाहे कितनी ही पुरानी और घिसी-पिटी क्यों न हो जाये... एक बार तो दिल फड़क ही उठता है... चेहरे चमचमाने ही लगते हैं। खैर, तो यह कोई अनहोनी बात नहीं थी। डॉक्टरों का नर्सों से, प्रोफेसरों का अपनी छात्राओं से, अफसरों का अपनी स्टेनो - सेक्रेटरी से प्रेम हो जाने का हमारे यहाँ आम रिवाज है। यह बात बिलकुल अलग है कि उनकी ओर से इसमें प्रेम कम और शगल ज्यादा रहता है।

शिंदे नये-नये तबादला होकर हमारे विभाग में आये थे। बेहद खुशमिजाज और खूबसूरत। आँखों में ऐसी गहराई कि जिसे देख लें, वह गोते ही लगाता रह जाये।

बड़ा शायराना अन्दाज था उनका और जल्दी ही मालूम पड़ गया कि वे कविताएँ भी लिखते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में वे धड़ाधड़ छपती भी रहती हैं और इस क्षेत्र में उनका अच्छा-खासा नाम है। आयकर विभाग की अफसरी और कविताएँ। हैं न कुछ बेमेल-सी बात! पर यह उनके जीवन की हकीकत थी।

मैं स्थितियों और उम्र के उस दौर से गुजर रही थी, जब लड़कियों में प्रेम के लिए विशेष प्रकार का लपलप भाव रहता है। बूढ़ी माँ तीनों छोटे भाई-बहनों को लेकर गाँव में रहती थी और मैं इस महानगरी में कामकाजी महिलाओं के एक होस्टल में। न घर का कोई अंकुश था और न इस बात की सम्भावना कि कहीं मेरा ठौर-ठिकाना लगा देंगे।

आखिर मैंने अपनी नाक और आँखों को कुछ अधिक सजग और तेज कर लिया। बस, ऐसा करते ही मुझे हर नौजवान की नजरों में अपने लिए विशेष संकेत दिखने लगे और उनकी बातों में विशेष अर्थ और आमंत्रण की गन्ध आने लगी। तभी भिड़ गया शिंदे। उसके तो संकेत भी बहुत साफ थे ... निमंत्रण भी बहुत खुला। लगा, किस्मत ने छप्पन पकवानों से भरी थाली मुझ भुक्खड़ के आगे परोसकर रख दी है। सो मैंने न

उसका आगा-पीछा जानने की कोशिश की और न अपना आगा-पीछा सोचने की। बस, आँख मूँदी और प्रेम की डगर पर चल पड़ी।

हर प्रेम की शुरुआत करीब-करीब एक-सी होती है। प्रेमियों को वे सारी बातें चाहे जितनी रोमांचकारी और गुदगुदानेवाली लगें, देखने-सुननेवालों को बड़ी उबाऊ और सपाट लगने लगती हैं। शामें हमारी किसी रेस्तराँ के नीम-अँधेरे कोने में बीततीं, तो कभी बाग के झुरमुट के बीच। कभी हम आपस में उँगलियाँ उलझाये रहते, तो कभी वह मेरी लटों से खिलवाड़ करता रहता। एक बार उसने कविता में मेरे बालों की उपमा बदली से दे दी। बस, फिर क्या था, मैं जब-तब गोदी में रखे उसके सिर पर झुककर बदली छितरा देती और वह उचककर...

यह क्या, आपकी आँखों में तो अविश्वास उभर आया। मैं समझ गयी। एक सीनियर अधिकारी और ऐसी छिछोरी फिल्मी हरकतें। पर सच मानिए, अब भी मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि यहाँ के हर पुरुष के भीतर एक ऐसा ही फिल्मी हीरो आसन मारे बैठा रहता है और जब तक वह पूरी तरह तृप्त न हो जाये, मरता नहीं। उम्र के किसी भी दौर पर, उस समय चाहे वह छह बच्चों का बाप ही क्यों न हो... जरा-सा मौका मिलते ही भड़भड़ाकर जाग उठता है और पूरी तरह अपनी गिरफ्त में जकड़ लेता है। फिर तो बड़ी-बड़ी तोपें तक ऐसी बचकाना और बेवकूफाना हरकतें करती हैं कि बस, तौबा! न कोई शर्म, न उम्र का लिहाज! आजकल की लड़कियों ने उस राज को अच्छी तरह समझ लिया है, पर मैं तो उन बहनों को सावधान करना चाहती हूँ, जो शादी के पहले ही से उस हीरो के चंगुल में आकर अपने को चौपट कर लेती हैं।

हाँ, तो मैं पूरी तरह शिंदेमयी हो गयी, पर तभी एक भयंकर झटका लगा। बल्कि कहूँ कि जो लगा, उसके लिए झटका शब्द हल्का ही है। मालूम पड़ा कि शिंदे की एक अदद बीवी है, जो पहली बार पुत्रवती बनकर पाँच महीने बाद अपने मैके से लौटी है यानी एक अदद बीवी और एक अदद बच्चा। मुझे तो सारी दुनिया ही लड़खड़ाती नजर आने लगी। लगा, मैं बहुत बड़ा धोखा खा गयी हूँ। मेरे भीतर गुस्सा बुरी तरह बलबलाने लगा। बीवी-बच्चे के रहते मेरी ओर प्रेम का हाथ बढ़ाने का मतलब? मैंने जब भी उससे घर और घरवालों के बारे में पूछा, वह तीन-चार शेर दोहरा दिया करता था, जिनका शाब्दिक अर्थ होता था, "मेरा न कोई घर है न दर, न कोई अपना न पराया।

इस जमीन और आसमान के बीच मैं अकेला हूँ, बिल्कुल अकेला," पर मेरे लिए इन शेरों का सीधा-सादा अर्थ था - हरी झंडी, लाइन क्लीयर। सो मैं सपाटे से चल पड़ी। बल्कि चलने में थोड़ा फुर्ती भी की। आप तो जानती ही होंगी कि इस उम्र तक शादी न होने पर लड़कियों में एक खास तरह की हड़बड़ाहट आ जाती है। चाहती हैं, जैसे भी हो, जल्दी-से-जल्दी प्रेमी को पूरी तरह कब्जे में करके, पति बनाकर अपनी टेंट में खोंस लें।

मैं भी इसी नेक इरादे से लपक रही थी कि बीच में ही औंधे मुँह गिरी।

पर गिरने नहीं दिया शिंदे ने। हाथों-हाथ झेल लिया।

उसने बिना किसी बात को मौका दिये मुझे बाँहों में भर लिया और धुआँधार रोने लगा, "पिता के दबाव में आकर की हुई शादी मेरे जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी बन गयी... बीवी के रहते भी मैं कितना अकेला हूँ ... दो अजनबियों की तरह एक छत के नीचे रहने की यातना..." ऐसी-ऐसी बातों के न जाने कितने टुकड़े आँसुओं से भीग-भीगकर टपक रहे थे। मेरा विवेक मुझसे संकल्प करवा रहा था कि लौट जाओ, इस दिशा में अब एक कदम भी मत बढ़ो। मैं रो-रोकर अपना संकल्प दोहरा रही थी। वह रो-रोकर अपना दुःख दोहरा रहा था।

इसी तरह हम दो-तीन बार और मिले। वही बातें, वही रोना। मैंने सोचा था कि आँसुओं के साथ मैं अपना सारा प्रेम और गम भी बहा दूँगी और हमेशा के लिए अलबिदा कहकर लौट जाऊँगी। पर हुआ एकदम उल्टा। आँसुओं के जल से सिंचकर प्रेम की बेल तो और ज्यादा लहलहा उठी। अब देखिए न, मीरा का पद - "अँसुवन जल सींच-सींच..." बचपन से पढ़ा था। पर हम सबकी ट्रेजेडी यही है कि स्कूली शिक्षा को जीवन में गुनते नहीं। शिक्षा एक तरफ जीवन एक तरफ और इसीलिए ठोकर खाते हैं।

यही हुआ। उसका दुखी और दयनीय चेहरा देखकर मेरे मन में प्रेम का ज्वार उमड़ने लगा। उसके आँसुओं ने प्रेम को इतना गीला और रपटीला बना दिया कि वापस मुड़ने को तैयार मेरा पैर अपने आपको स्वाहा करने के लिए आगे बढ़ गया।

शिंदे इस मैदान का पक्का खिलाड़ी था। मेरे असमंजस और दुविधा को चट भाँप गया। केवल भाँप ही नहीं गया, वरन उसने यह भी महसूस कर लिया कि बीवी की उपस्थिति से हमारे प्रेम में आपातकालीन स्थिति पैदा हो गयी है। अब यदि इसे बचाकर रखना है, तो प्रेम करने के तरीके में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना होगा। बिना उसके मामला चलनेवाला नजर नहीं आ रहा था। रेस्तराँ और बाग-बगीचों के बीच तो यह परिवर्तन आ नहीं सकता था, इसलिए बड़ी शिद्दत के साथ एक कमरे की तलब महसूस होने लगी।

तीन-चार कमरा-मुलाकातों में ही मैंने समझ लिया कि इन मुलाकातों के कारण उसके भीतर किसी तरह का अपराध-बोध, या कुछ गलत करने का भाव लेशमात्र भी नहीं है। वह काफी तृप्त और छका हुआ लगता था। मुझे समझते देर नहीं लगी कि शरीर के स्तर पर भी मैंने अपने को उसके लिए अनिवार्य बना लिया है। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा यह समर्पण तुरुप के इक्के की तरह कारगर सिद्ध होगा और बाजी मेरे हाथ। निश्चय ही इन मुलाकातों ने मेरे प्रेम को बड़ी मजबूत बैसाखियाँ थमा दीं और मेरे लड़खड़ाते कदम फिर जम गये।

वह मेरे साथ भविष्य की योजनाएँ बनाता, पर उन्हें अमल में लाये, तब तक के लिए एक मौन समझौता हम लोगों के बीच हो गया। अपना शरीर, अपनी भावनाएँ उसने मेरे जिम्मे कर दीं और घर, बच्चा, बूढ़ा बाप और सारी पारिवारिक खिचखिच बीवी के जिम्मे। इस विभाजन में मैं कुछ समय के लिए परम प्रसन्न। यों भी इस उम्र में आदमी को सबसे ज्यादा भरोसा अपने शरीर पर ही होता है। शरीर पा लिया, समझो दुनिया-जहान हथिया लिया। ऊपर से मुझे वह कभी बातों से, तो कभी कविताओं से समझाता रहता कि मन और शरीर की पवित्र भूमि पर ही असली प्रेम पनपता है। घर की चहारदीवारी के बीच निरन्तर होनेवाली खिचखिच में तो वह मरता ही है। मैं समझती रहती और अपने को बहुत पुख्ता जमीन पर महसूस करती। वह बातें ही ऐसी करता कि सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता। मुझे पूरा विश्वास था कि एक दिन वह खूँटे से उखड़कर मेरी गिरफ्त में आ जायेगा।

बीवी की याद और बात से ही शिंदे अपना चेहरा एकदम मायूस बना लेता और बिना कहे ही मेरे दिमाग में यह बिठाने की कोशिश करता कि बीवी बनते ही औरत बहुत

उबाऊ और त्रासदायक बन जाती है... कि रिश्तों में बँधते ही प्रेम नीरस और बेजान हो जाता है... कि सच्चे प्रेमियों को तो हमेशा मुक्त ही रहना चाहिए।

बीवी बनने की ललक जब-तब मेरे भीरत जोर मारती थी। सच बात है, मुझे तो घर भी चाहिए था, पति भी और बच्चे भी। पर उसे तो जैसे बीवी नाम से ही चिढ़ हो गयी थी। कभी-कभी तो वह अपनी बीवी के कर्कश स्वभाव और तुनकमिजाजी की बात करते-करते रो तक पड़ता। तब मैं लपककर उसे बाँहों में भरती, अपने होंठों से उसके आँसू पोंछती और उसे हौसला बँधाती कि जल्दी ही हम कुछ ऐसा करेंगे कि वह इस दुःख से मुक्त हो... कि मैं उसे एक सही, सुखद जिन्दगी दूँगी। यह आश्वासन उसके लिए कम, मेरे अपने लिए ज्यादा होता था।

दिन सरकते जा रहे थे और अपने प्रेम करने के तरीके में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के बावजूद स्थिति जहाँ-की-तहाँ थी यानी कि मैं अपने हॉस्टल के कमरे में बन्द, शिंदे अपनी बीवी की मुट्ठी में। आज सोचती हूँ तो अपने पर ही सौ-सौ धिक्कार के साथ आश्चर्य भी होता है कि कैसे मेरी बुद्धि पर ऐसा मोटा परदा पड़ गया था कि यह भी नहीं सोच सकी कि उसकी बीवी भी आखिर मेरी तरह ही एक स्त्री है... अपने पति के छलावे और मक्कारी की शिकार। पर नहीं, यह तो तब समझ में आया जब उसकी मक्कारी ने मुझे भी तबाही के कगार पर ला पटका।

तभी तो मैंने सोचा कि क्यों न मैं जब-तब वहाँ उपस्थित होकर उसके त्रास को इतना बढ़ा दूँ कि वह खुद ही इस अपमानजनक स्थिति को नकारकर अलग हो जाये। रकीब को सामने देखकर अच्छों-अच्छों के हौसले पस्त हो जाते हैं, फिर अपमान और अपेक्षा की आग में झुलसी इस औरत का हौसला ही क्या होगा। और यही सोचकर आखिर मैं एक दिन शिंदे के घर जा धमकी।

एक सुहागिन औरत की सारी नियामतों यानी कि बूढ़े ससुर के वरदहस्त की छत्रा-छाया और बच्चे के पोतड़ों के वन्दनवार के बीच, दूधों नहायी पूतों फली भाव से वह कुर्सी पर विराजमान थी।

मुझे देखकर उसके चेहरे पर किसी तरह का कोई विकार नहीं आया।

विकार तो मुझे देखकर शिंदे के चेहरे पर आया, जिसे उसने थोड़ी-सी कोशिश करके अफसरी नकाब के नीचे ढक लिया। दफ्तरी भाषा में दफ्तरी बातें करके उसने मुझे चलता किया। पर बाहर निकलते समय हाथ दबाकर लाड़ में लिपटी हल्की-सी-फटकार के साथ शाम को कमरे पर आने का निमन्त्रण भी दे दिया।

मैं उसकी बीवी को त्रस्त करने गयी थी, पर खुद ही त्रस्त और पस्त होकर लौटी। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि यह औरत है या माँस का लोंदा? इसका आदमी तीन साल से एक दूसरी लड़की के साथ मस्ती मार रहा है और उसे न कोई तकलीफ, न कष्ट! मैं इसकी जगह होऊँ तो शायद एक दिन भी इस तरह की अपमानजनक स्थिति को बर्दाश्त न करूँ। इसके शरीर पर चमड़ी लिपटी है, या गैंडे की खाल? यह तो मुझे बहुत बाद में अपने अनुभव ने सिखाया कि अधिकतर शादी-शुदा औरतें ऐसी होती हैं, जिन्हें अपने घर की दीवारों से बेशुमार लगाव होता है। इतना ज्यादा कि धीरे-धीरे उन दीवारों को ही अपने शरीर के चारों ओर लपेट लेती हैं। फिर मान-अपमान के सारे हमले उनसे टकराकर बाहर ही ढेर हो जाते हैं और वे उनसे बे-असर सती-साध्वी-सी भीतर सुरक्षित बैठी रहती हैं।

शाम को शिंदे मुझ पर एकदम बरस पड़ा कि मैंने उसके घर आने की मूर्खता क्यों की? कितना चौकस रहना पड़ता है उसे हर समय, जिससे उसकी बीवी को इस प्रसंग की हवा भी न लग सके, वरना तो वह शूर्पनखा की तरह ऑफिस, परिवार और सारे शहर में हड़बोंग मचाकर रख देगी। मौका लगा तो मेरा झोंटा पकड़कर सड़क पर जूते लगवायेगी, और बड़ी चालाकी से उसने मेरे मन में अपनी पत्नी के लिए, जिसे वह अक्सर कोतवाल कहता था, ढेर सारी नफरत और आक्रोश भर दिया। साथ ही जल्दबाजी करने की अपनी नादानी-भरी मूर्खता पर मुझे बेहद शर्मिन्दा भी किया।

देखा आपने कि कैसे शातिराना अन्दाज से पुरुष नफरत और गुस्से की सुई अपनी ओर से सरकाकर दोनों औरतों की ओर घुमा देता है। वे ही आपस में लड़े-भिड़ें, कोसे-गलियायें और वह जो असली गुनहगार है, अपने पर आँच आये बिना आराम से दोनों का सुख भोगता रहे।

वह समझाता कि सहजीवन का मधुरतम पक्ष तो हम भोग ही रहे हैं, मैं क्यों बेकार में शादी-ब्याह और घर में जकड़कर इस मधुर सम्बन्ध का गला घोंटना चाहती हूँ। और इसी चक्कर में वह मधु उड़ेलती हुई तीन-चार फड़कती कविताएँ मेरे नाम ठोंक देता।

मेरे कन्धों पर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को एक नयी दिशा देने का दायित्व है। अगली पीढ़ी अधिक स्वस्थ, अधिक मुक्त जिन्दगी जी सके, उसके लिए हमें पहल करनी होगी, एक उदाहरण रखना होगा - चाहे उसके लिए हमें खाद ही क्यों न बनना पड़े। शिंदे तो ये बातें झाड़कर मजे से अपनी बीवी का बगलगीर हो जाता और मैं असली अर्थों में खाद बनी अपने कमरे में सड़ती रहती।

तभी शिंदे का तबादला हो गया। मैं एक बार फिर डगमगा गयी। मुझे लगा कि बस, अब यह मेरी जिन्दगी से निकला।

पर उस समय तो बस, शिंदे में ही प्राण बसते थे... लगता था, उसके बिना जी नहीं सकूँगी। गलत-सही की समझ ही कहाँ रह गयी थी। मैं उसे पाना चाहती थी और वह मुझे खोना नहीं चाहता था।

उसके साथ होटल में गुजारे वे दिन। मैं तो भूल ही गयी कि हम दोनों के बीच कोई तीसरा भी है। तबीयत एकदम लहलहा उठी। इस बार उसने बाकायदा योजना बनायी कि पत्नी को अब यहाँ न बुलाकर उसके पिता के घर भेज देगा और धीरे-धीरे उसे कानूनी कार्रवाई करने के लिए राजी कर लेगा... यदि नहीं हुई तो, मजबूर करेगा।

बातों का तो वह बादशाह था ही, पत्र लिखने में भी उसे कमाल हासिल था। शरीरों में जो दूरी आ गयी थी, उसे वह पत्रों की भाषा से पाटता रहता। पत्रों में मुझे वह "दिव्य-प्रेम" का दर्शन समझाता। मेरे जन्म-दिन पर अपने इसी दिव्य-प्रेम में डुबोकर उसने एक खूबसूरत-सा तोहफा मेरे लिए भेजा। कभी वह चाँदनी रात के गीत लिखकर भेजता, तो कभी साथ बिताये मधुर क्षणों की याद को ताजा करनेवाली कविताएँ।

उसने आँखों में सचमुच के आँसू भरकर कहा कि मैं ही शिंदे की प्राण हूँ, शिंदे की प्रेरणा हूँ। घर-परिवार के अतिरिक्त शिंदे का जो कुछ भी है - और वही तो असली शिंदे है - वह उसने मुझे पूरी तरह सौंप रखा है और तुरंत उसने अपनी बात का प्रमाण पेश कर

दिया मुझे समर्पित किया हुआ अपना नया कविता-संग्रह। हाथ से लिखा हुआ था - "प्राण को"

उसकी प्रेरणा और प्राण बनने का हश्र यह हुआ कि वह तो दिन-दूना रात-चौगुना फलता-फूलता रहा। धन-यश, सफलता, मान-सम्मान - सभी का मालिक और मैं भीतर-ही-भीतर झुलसकर काठ का कुंदा हो गयी। सब ओर से मरी, मुरझायी, टूटी और पस्त। मैं समझ गयी कि मैं बुरी तरह ठगी गई हूँ।

धीरे-धीरे उम्र की बढ़ोत्तरी और ऑफिस और दुनियादारी की निरंतर बढ़ती जिम्मेदारियों के बीच शिंदे की रोमानी जरूरत घटती चली गयी। परिणाम यह हुआ कि हमारे बीच चलनेवाले पत्रों की संख्या कम और मजमून मौसम के सर्द-गर्म होने पर आकर टिक गया।

आठ साल तक चलनेवाला प्रेम-प्रसंग महज एक खिलवाड़ था, जिसकी बाजी बड़ी होशियारी से शिंदे ने बाँटी। भ्रमजाल के कटते ही नजर साफ हुई, तो बाजी में बँटे हुए पत्तों का यह नशा रह-रहकर मेरी आँखों में उभरने लगा :

तुरुप का इक्का यानी घर - उसके पास

तुरुप का बादशाह यानी बच्चा - उसके पास

तुरुप की बेगम यानी बीवी और प्रेम करने के लिए प्रेमिका - उसके पास

तुरुप का गुलाम यानी नौकर-चाकर-गाड़ी-बँगला - उसके पास

लब्बो-लुवाब यह कि तुरुप के सारे पत्ते उसके पास और मुझे मिले उसके दिये हुए छक्के-पंचे, यानी टोटके की तरह पुड़िया में बँधे, दार्शनिक लफ्फाजी में लिपटे हवाई प्यार के चन्द जुमले। इन टटपुँजिया पत्तों के सहारे मैं ज्यादा-से-ज्यादा इतना ही कर सकती थी कि जिन्दगी भर उसकी पूँछ पकड़े रहती और उसे ही अपनी उपलब्धि समझ-समझकर सन्तोष करती। मन बहुत घबराता, तो उसी पूँछ से हवा करके उसके साथ बिताये मधुर क्षणों पर जमी समय की धूल उड़ाकर कुछ समय के लिए अपना खालीपन भर लेती।

निहायत हवाई बातें पल्ले से बाँधे-बाँधे मैंने अपनी जिंदगी को बरबादी के कगार पर ला पटका था। अब चाहती हूँ, ठेठ दुनियादारी की बातें अपनी हजार-हजार मासूम किशोरी बहनों के पल्ले से बाँध दूँ, जिससे वह मेरी तरह भटकने से बच जायें।

इस देश में प्रेम के बीच मन और शरीर की "पवित्र भूमि" में नहीं, ठेठ घर-परिवार की उपजाऊ भूमि से ही फलते-फूलते हैं।

भूलकर भी शादीशुदा आदमी के प्रेम में मत पड़िए। 'दिव्य' और 'महान प्रेम' की खातिर बीवी-बच्चों को दाँव पर लगानेवाले प्रेम-वीरों की यहाँ पैदावार ही नहीं होती। दो नावों पर पैर रखकर चलनेवाले 'शूरवीर' जरूर सरेआम मिल जायेंगे।

हाँ, शादीशुदा औरतें चाहें, तो भले ही शादीशुदा आदमी से प्रेम कर लें। जब तक चाहा प्रेम किया, मन भर गया तो लौटकर अपने खूँटे पर। न कोई डर, न घोटाला, जब प्रेम में लगा हो शादी का ताला।